International Journal of Academic Research and Development
ISSN: 2455-4197
Impact Factor: RJIF 5.22
www.academicsjournal.com
Volume 2; Issue 5; September 2017; Page No. 1134-1138

वैदिक यज्ञों का वैज्ञानिक महत्व : एक विवेचन

डॉ० राजीव मिश्र
शोध सहायक, संस्कृत विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

विश्व साहित्य की प्राचीनतम रचना वेद हैं, जो ज्ञान के भण्डार एवं भारतीय संस्कृति के आधार माने जाते हैं। वैदिक–साहित्य न केवल धार्मिक एवं सांस्कृतिक ज्ञान का मूल स्रोत हैं अपितु उसमें आर्य जाति के उच्च स्तर का वैज्ञानिक चिन्तन भी समृद्ध रूप में संरक्षित हैं। हमारी सभ्यता, संस्कृति एवं बौद्धिकता का उत्कर्ष वेदों में ही प्राप्त होता है। वैदिक ऋषि तपः पूत जीवन व्यतीत करते हुए सृष्टि मात्र के कल्याण के लिए परम पिता से प्रार्थना करते हैं। अपनी इसी साधना के फलस्वरूप हमारे मनीषी पूर्वजों ने विश्व, राष्ट्र, समाज, परिवार एवं व्यक्ति के आध्यात्मिक, आधिदैविक एवं आधिभौतिक सुख–समृद्धि के कारण भूत एवं ऐसे कर्मकाण्ड परक तरीके का आविष्कार किया जो आध्यात्मिकता एवं वैज्ञानिकता के मध्य सामन्जस्य स्थापित करता है।

यज्ञो वै श्रेष्ठतम् कर्म[1], यज्ञेय यज्ञमजयन्त देवाः[2], अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः[3], यज्ञो वै विष्णु[4], इन प्रशस्तियों से युक्त वैदिक वाङ्मय में तथा उपनिषद्सारभूता, श्रीमद्भागवद्गीता के अनेक प्रमाण रूप वाक्यांषों– यज्ञार्थात्कर्मणोऽलोकोऽयं कर्मबन्धनः[5], यज्ञषिश्टाषिनः सन्तोमुच्यन्ते सर्वकिल्वशैः[6], तस्मात्सर्वगतं ब्रह्मनित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्[7], आदि की सम्यक् मीमांसा से यज्ञ के सर्वाधिक तथा साङ्गोपाङ्ग महत्ता का बोध होता है। वैदिक साहित्य में यज्ञ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कृत्य के रूप में प्रतिष्ठित है। संहिताओं में यज्ञार्थ ही ऋक्, यजुश तथा साम इन विधाओं में मन्त्रों का सङ्कलन किया गया है। वैदिक साहित्य में संहिताओं की संख्या चार हैं, जिनकी 1131 शाखाएँ हैं। इन शाखाओं में कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड एवं ज्ञानकाण्ड ये तीन भाग हैं और इनमें समस्त मन्त्रों की संख्या एक लाख हैं– लक्षं तु वेदाश्चत्वारः लक्षं भारल्मेव च[8]। वेदों के इन एक लाख मन्त्रों मे 80 हजार मन्त्र कर्मकाण्डपरक, 16 हजार मन्त्र उपासना काण्ड तथा 4 हजार मन्त्र ज्ञानकाण्ड से सम्बन्धित हैं। इस विवेचना से यह भली–भाँति स्पष्ट हो जाता है कि कर्मकाण्ड ही वेदों का मुख्य प्रतिपाद्य है। कर्मकाण्ड से विशेषतः यज्ञों का ही प्राधान्य है।

यज्ञ शब्द यज् देवपूजासङ्गतिकरणदानेशु धातु से भाव अर्थ में नङ् प्रत्यय[9] के द्वारा निष्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है– यजन सम्बन्धी कृत्य। याग एवं मख इसके पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। यहाँ यज्ञ शब्द देव पूजा– यजनं इन्द्रादि देवानां पूजने सत्कारभावनं यज्ञः[10] संङ्गतिकरण– यजनं धर्म–देश–जाति–मर्यादा रक्षायै महापुरुषाणां एकीकरणं यज्ञः[11] तथा दान– यजनं यथाशक्ति पात्रदिविचारपुरस्सर द्रव्यादि त्याग[12]– इन तीन गौण अर्थों में प्रयुक्त हुआ है, किन्तु यह शब्द का मुख्य अर्थ कात्यायन ने कात्यायन श्रौतसूत्र में बताते हुए लिखा है कि– यज्ञं व्याख्यास्यामः। द्रव्यं देवता त्यांगं[13] अर्थात् अग्नि आदि देवताओं के उद्दश्य से दधि, सोम, व्रीहियवादि द्रव्य का त्याग ही यज्ञ है।

ऋषियों ने यज्ञ के सात प्रमुख साधन बताएँ है जिनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है–

1. हवि– यज्ञ का प्रथम साधन हवि है, जिसे यज्ञ का प्राण भी कहा जाता है।[14] अग्नि में पकाई गई इस हवि को अमृत कहा गया है। हवि की ही भाँति यज्ञों में घृत का भी प्रयोग किया जाता है।
2. समिधा– यज्ञीय लकड़ियों को ही समिधा कहते हैं। सूर्य रश्मियों के विषेश रूप से घर माने जाने वाले बरगद, गूलर, पीपल और प्लक्ष (पाकड़) की लकड़ियाँ समिधा के रूप में प्रयोग की जाती हैं।[15]
3. यज्ञ भूमि– इसको यज्ञ–वेदी और यज्ञ–मण्डप भी कहते हैं। वस्तुतः यह पृथ्वी ही सभी देवताओं का निवास स्थल है। अतः शुद्ध भूमि ही यज्ञ भूमि है।
4. कुशा– यज्ञ में बहुधा उपयोगी घास विशेष। कुशा एवं समिदाहरण ब्राह्मण एवं ब्रह्मचारी के लिए नित्य कर्म बताया गया है। वह कुशा देवताओं एवं अदिति पुत्रों को सुखपूर्वक बैठने के लिए भूमि पर बिछायी जाती है।[16]
5. ऋत्विज्– ऋत्विज् को ही विद्वानों ने निश्चित रूप से यज्ञ का साधन स्वीकार किया है। ये चार प्रकार के होते हैं– क) ब्रह्मा– यज्ञ में त्रुटि हो जाने पर उसे ठीक करवाता है। ख) होता– यह ऋचाओं का बार–बार उच्चारण करता हुआ यज्ञ वेदी पर बैठता है। ग) उद्गाता– यह ऋचाओं के साम को गाता है। घ) अध्वर्यु– यह यज्ञ के शरीर स्वरूप को बनाता है।
6. यज्ञ मन्त्र– मन्त्र असाधारण शक्ति सम्पन्न बतलाए गए हैं। मन्त्र से भगवान् एवं देवता वशीभूत होकर सिद्धियाँ प्रदान करते हैं।
7. दक्षिणा– दक्षिणा के बिना यज्ञ अपूर्ण होकर नश्ट हो जाता है।[17] वेदों में अश्व, सोना–चाँदी, वस्त्रादि को दक्षिणा के रूप में देने का उल्लेख मिलता है जिससे दाता द्युलोक में स्थित हो जाते हैं।

गोपथकार के अनुसार यज्ञों का क्रम[18] निम्नलिखित प्रकार है–

अग्न्याधान– सभी यज्ञ, अग्न्याधानपूर्वक होते हैं। अग्न्याधान का अर्थ है– अग्नि को प्रज्जवलित करना।

अग्निहोत्र– इसे सम्पूर्ण यज्ञों का मुख कहा जाता है। यह यज्ञ प्रातः एवं सायं करणीय होता है।

दर्शपौर्णमास– यह यज्ञ स्वर्ग प्राप्ति के लिए किया जाता है– सुवर्गाय हि वै लोकाय दर्शपूर्णमासौ इज्येते।[19] यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण यज्ञ माना गया है।

चातुर्मास्य– यह प्रत्येक तीन मास के अनन्तर होने वाला यज्ञ है। इसके चार भेद हैं– क) वश्वदेव ख) वरुणप्रघास ग) साकमेध घ) शुनासीरीय।

सोमयाग– इस यज्ञ का एक अन्य नाम अग्निष्टोम भी है। यह यज्ञ पशुबलि से सम्बन्धित है।

वाजपेय– यह यज्ञ रथदौड़ से सम्बन्धित यज्ञ है, जो एक शरत्कालीन यज्ञ माना जाता है।

राजसूय– यही सोमयाग है, जो राजनीति से सम्बन्धित है और स्वर्ग प्राप्तयर्थ किया जाता है।

अश्वमेध– यह भी राजनीति से सम्बन्धित है तथा इसे यज्ञों का राजा कहा जाता है।

पञ्चमहायज्ञ– स्मृतियों में विवेचित तथा वर्तमान में प्रचलित पञ्चमहायज्ञों (महामखाः) का स्वरूप इस प्रकार है।

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृ यज्ञस्तु तर्पणम्।
होमोदैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्।[20]

मनुस्मृति के अनुसार पञ्चसूना (पाँच प्रकार के दैनिक पापों) से छुटकारा पाने के लिए इस पञ्चमहायज्ञों का अनुष्ठान आवश्यक है।[21] इनमें से ब्रह्मयज्ञ में अनुष्ठाता प्रतिदिन वेदादि शास्त्रों का अध्ययन एवं अध्यापन करता है। पितरों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन ही पितृयज्ञ है। यह तर्पण, बलिहरण एवं प्रतिदिन श्राद्ध द्वारा सम्पादित होता है। देवता का नाम लेकर स्वाहा शब्द के उच्चारण के साथ अग्नि में हवि अथवा समिधा डालना देवयज्ञ है। याज्ञवल्क्य के अनुसार कुत्तों, चाण्डालों और कौओं को पृथ्वी पर बलि देना भूतयज्ञ है। अतिथि का सत्कार या सम्मान करना नृयज्ञ कहलाता है।
वैदिक साहित्य में यत्र–तत्र सर्वत्र उल्लिखित यज्ञों के अनेक भेद मिलते हैं, जिनका सङ्कलन करके विद्वानों ने इन्हें निम्न तीन संस्थाओं में विभाजित किया है, जिनमें प्रायः सभी श्रौत (श्रुति सम्बन्धी) एवं स्मार्त (स्मृति सम्बन्धी) यज्ञों का समावेश हो जाता है–

हविर्यज्ञ संस्था– इस यज्ञ के 7 प्रमुख यज्ञ इस प्रकार हैं–
1. अग्न्याधेय
2. अग्निहोत्र (अग्नये हूयते अस्मिन् तद् अग्नि होत्रम्)
3. दर्शपौर्णमास– दर्शयाग अमावस्या को तथा पौर्ण मासे याग पूर्णिमा को यावज्जीवन करणीय होते हैं।
4. आग्नायण (नवसस्येष्टि या नवात्रेष्टि)
5. चातुर्मास्य– यज्ञ चार–चार मासों में अनुष्ठेय
6. प्शुबन्ध (निरुद्धापशुबन्ध)– पश्विजा संवत्सरे संवत्सरे प्रावृषि (प्रत्येक वर्ष वर्षा ऋतु में अनुष्ठेय)
7. सौत्रामणि– यह भी पशुयाग के ही अन्तर्गत आता है।

सोमयज्ञ– संस्था यह भी 7 प्रमुख यज्ञों का समूह है जो निम्नलिखित प्रकार है–
1. अग्निष्टोम संस्था– एशः प्रथमः सोमः। इस याग के करने का समय बसन्त ऋतु माना गया है।
2. अत्यग्निश्टोम (अत्यसस्येश्टि)– वस्तुतः अग्निष्टोम की ही विकृ ति है। इसमें प्रायः सम्पूर्ण विधि प्रकृति भूत अग्निष्टोमयागवत् होती है।
3. उक्थ्य
4. शोडशी– यह भी अग्निष्टोम की विकृति है। प्रायः सभी निधान प्रकृति यागवत् होते हैं। वीर्य की कामना से करणीय है।
5. वाजपेय– अग्नादि की कामना करने वाले व्यक्ति द्वारा षरद् ऋतु में अनुष्ठेय।
6. अतिरात्र– अग्निष्टोम याग की विकृति यह याग ब्रह्मवर्चस की कामना से किया जाता है।
7. आप्तोर्याम– यह अतिरात्र की विकृति है, जो पशु प्राप्ति की कामना से किया जाता है।

पाकयज्ञ संस्था– इन्हे गृहयाग भी कहते हैं। गृह्यसूत्रों में वर्णित यज्ञ ही गृहयाग हैं। इसके सात प्रमुख यज्ञ अधोलिखित हैं–
1. अष्टकाश्राद्ध
2. पार्वणश्राद्ध
3. श्रावणी
4. आग्रहायणी
5. मासिश्राद्ध
6. आष्वयुजी
7. चैत्री।

यज्ञ के संक्षिप्त स्वरूप विवेचन के पश्चात् उसके वैज्ञानिक तथ्यों का उद्घाटन एवं अवबोध सरल एवं सुग्राह्य हो सकेगा। वर्तमान समय में समस्त मानव जाति के लिए अनेकानेक ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो रही है जिनका यदि समय रहते यथोचित निवारण न किया जाए तो मानव अस्मिता ही संकट में पड़ जाएगी। इन समस्याओं में पर्यावरण की समस्या, अनेक असाध्य रोगों की समस्या, मानसिक विकृतियाँ, वैष्विक तापमान में वृद्धि, अम्लवर्षा, अतिवृष्टि एवं अनावृष्टि आदि समस्याएँ सम्पूर्ण विष्व के लिए निरन्तर चिन्ता एवं भय का कारण बनी हुई हैं। इन समस्याओं के निवारण के लिए जो भी आधुनिक भौतिक उपाय किए जा रहे हैं वह या तो पूर्णतया असफल हो रहे हैं या उनकी सफलता की अपनी सीमा है। इसके अतिरिक्त इन भौतिक उपायों से अन्य समस्याएँ भी जन्म ले रही हैं। यही कारण है कि वर्तमान में सम्पूर्ण विश्व एक स्वर में प्राकृतिक उपायों को अपनाने का आह्वान् कर रहा है। प्रकृति के प्रति विष्व की यह अवधारणा हमारी प्राचीन संस्कृ ति एवं यज्ञ–विधान का मुखर समर्थन ही है।
पर्यावरण प्रदूशण उपर्युक्त समस्त समस्याओं की मूल है, जो लोभ–वृत्ति से पराभूत मनुश्य के द्वारा निसर्ग के नियमों के अतिक्रमण से जन्मी है। वैदिक साहित्य में वर्णित सम्पूर्ण यज्ञ–प्रक्रिया वातावरण के शोधन का उत्कृष्ट तरीका सिद्ध होता है। हमारे ऋषियों ने प्रातः सायं अग्निहोत्र का विधान किया था जिसमें घृत एवं औषधियों की आहुति दी जाती थी जिससे वे आज्यादि पदार्थ सूक्ष्मातिसूक्ष्म होकन न केवल वातावरण को शुद्ध करते थे बल्कि इससे वातावरण सुगन्धित एवं पवित्र भी होता था।

यस्ते गन्धः पृथ्वीं सम्वभूव यं बिभ्रत्योशध्यो यमापः।[22]
इस विशय में महर्शि दयानन्द का विचार है कि दुर्गन्धयुक्त वायु और जल से रोग, रोग स दुःख किन्तु सुगन्धित वायु तथा जन से आरोग्य और आरोग्य से सुख की प्राप्ति होती है।[23] अनावृष्टि पर्यावरण जनित एक प्रमुख समस्या है, जिसका वैज्ञानिकों के पास कोई कारगर उपाय नहीं है। श्रीमद्भागवद्गीता में उल्लेख मिलता है कि सम्पूर्ण अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न की वृष्टि से और वृष्टि की यज्ञ से होती है–

अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्न संभवः।
यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुद्भवः।[24]

हमारे मनीषी पूर्वजों ने अयं यज्ञों विश्वस्य भुवनस्य नाभिः[25] कहकर यज्ञ को सम्पूर्ण जगत् का, सृष्टि का आधार बिन्दु बताया है। यज्ञो वै श्रेश्ठतमं कर्म[26] के नियमानुसार यज्ञ श्रेश्टतम कर्म कहा गया है जिसका अभिप्राय है कि यज्ञ के द्वारा पर्यावरण को षुद्ध रखकर प्रदूषण जनित अनेक समस्याओं से बचा जा सकता है। यज्ञ की इसी विशेषता के कारण इसे प्रजापति की संज्ञा भी प्रदान की जाती है। आधुनिक वैज्ञानिक धारणा यह है कि वृक्ष एवं वनस्पतियाऋं वायु प्रदूषण जनित विष (Co_2) आदि का संश्लेषण कर लेती है। इस कारण वृक्ष एवं वनस्पतियाँ पर्यावरण शोधन के सर्वाधिक कारगर उपाय हैं—

यस्यां वृक्षा वनस्पतयो ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा।
पृथिवीं विश्वधायसं धृतमच्छावदामसि।[27]

अर्थात् जिस भूमि में वृक्ष एव ंवनस्पतियाँ सदैव विद्यमान् रहती हैं वह भूमि विश्व के समस्त प्राणियों के भरण—पोषण में समर्थ होती हैं। इसी प्रकार हिमाच्छादित ऊँचे पर्वत एवं वनाच्छादित भूमि सभी प्राणियों को आनन्द प्रदायक होती हैं— गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं तो पृथिवी स्योनमस्तु।[28]

वैदिक ऋचाओं में जल निर्माण की नितान्त प्रक्रिया का वर्णन मिलता है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार जल हाइड्रोजन एवं आक्सीजन गैसों के निश्चित अनुपात में सम्मिश्रण से बना यौगिक है। $2H_2 + O_2 = 2H_2O$, वेदों में गैसों को क्रमशः मित्र एवं वरुण नाम से अभिहित किया गया है। ऋग्वेद में ऋषि पदार्थों को पवित्र करने में दक्ष और सबसे हल्की गैस (हाइड्रोजन गैस) का और रोग निवारक एवं स्वास्थ्यप्रद वरुण (O_2) का इसलिए आह्वान् करता है, क्योंकि ये दोनो जल निर्माण की क्रिया को सिद्ध करने वाली हैं— मित्रं हुवे पूत। दक्षं वरुणं च रिषादसम्। धियं धृताचीं साध्यन्ताम्[29] मित्र एवं वरुण के इसी गुण के कारण इन्हें वृष्टि के अधिपति की उपाधि से विभूषित कर वर्षा द्वारा जनमानस के कल्याण की इनसे प्रार्थना की गयी है— मित्रावरुणौ वृष्ट्याधिपति तौ माऽवताम्। आचार्य मनु का कथन है कि अग्नि में प्रक्षिप्त आहुति आदित्य लोक में पहुँचती है और वहाँ से वर्षण प्रक्रिया द्वारा अन्न उत्पादन और उससे प्रजाओं का पालन होता है।[30] इस प्रकार स्पष्ट है कि यज्ञ वृष्टि का मुख्य साधन है। इसके अतिरिक्त हवन में प्रयुक्त घृत सूक्ष्मीकृत होकर वायु द्वारा बादलों तक पहुँचकर अपनी चिकनाई की एक पर्त उस पर जमा देता है, जिसके कारण बादल भारी होकर बरसने लगते हैं।

ओजोन (O_3) की परत क्षरण की समस्या एक ऐसी समस्या है जिसके कारण सूर्य की हानिकारक परावैगनी किरणें (Ultra Violet Rays) पृथ्वी पर आकर वनस्पतियों एवं जीव—जन्तुओं को नश्ट कर सकती हैं। इस ओजोन (O_3) की परत को सर्वाधिक प्रभावित करने वाला रसायन क्लोरोफ्यूरोकार्बन (C.F.C) है जिसकी मात्रा को वायुमण्डल में घटाकर इसके ह्रास को रोका जा सकता है। इस विषय में हमारे ऋषियों ने यज्ञ—विधि का आविष्कार कर निरन्तर कई सहस्र वर्षों तक इस समस्या से बचे रहे।

भारतीय आध्यात्मिक चिन्तन प्रकृति के उपादानों में असीमित ऊर्जा की उपस्थिति को स्वीकार करता है और उस शक्ति के सन्तुलित रहने एवं कल्याणप्रद होने के लिए उसकी अतीव श्रद्धा के साथ स्तुति करता है। हमारे ऋषिगण इस बात के लिए निरन्तर प्रयासशील रहते थे कि प्राकृतिक सम्पदा नष्ट न हो और बार—बार उपयोग में आ सके। उनकी पूत भावना थी कि पृथ्वी पर समस्त जड़—चेतन प्राणियों के प्रसन्न रहने से ही सम्पूर्ण मानव जाति प्रसन्न रह सकती है। इसीलिए वैदिक ऋचाओं में प्रकृति के प्रत्येक उपादान के कल्याणकारी होने की कामना की गयी है।

ऊँ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं षान्तिः, पृथिवीशान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिविश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्ति रेधिः। इस प्रकार प्रकृति के प्रति तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित कर तथा उसके प्रति श्रद्धा का विकास करके सम्पूर्ण पर्यावरण को विशाक्त होने से बचाया जा सकता है।

यज्ञ के द्वारा मानव जाति की भावना उदार बनती है जिसके फलस्वरूप वह समस्त विश्व में एकात्मकता का अनुभव करते हुए विश्वकल्याण की चिन्ता करने लगता है। उसका हृदय इतना विशाल हो जाता है कि उसके मन में अपने—पराए का भाव ही नहीं उत्पन्न होता—

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम।
उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्।[31]

इस भावना के पश्चात् कोई भी अनुष्ठान प्राणिमात्र के कल्याणार्थ ही सम्पादित किया जाता है—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्।

इस प्रकार स्पष्ट है कि यज्ञ—कर्म विष्वषान्ति के साधन के रूप में पर्याप्त उपयोगी है, जिसकी आज महती आवश्यकता महसूस की जा रही है। हमारे ऋषि—मुनि उच्च कोटि के वैज्ञानिक थे जो पदार्थ विज्ञान से लेकर चेतना के विभिन्न घटकों तक का गहन षोध करते थे। यज्ञ—विज्ञान चिकित्सा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला सकता है। यह बात यज्ञों में प्रयुक्त होने वाली समिधाओं, हविश्य एवं यज्ञाग्नि के वैज्ञानिक अध्ययन से भलीभाँति प्रमाणित हो जाती है। आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान का मत है कि व्याधियों के जन्मदाता रोगाणु (कीटाणु एवं कृमि) और विषाणु हैं। ये रोगाणु एवं विविध प्रकार के तथा अतिसूक्ष्म होते हैं जिसके कारण ये सूक्ष्मदर्शी जैसे यन्त्रों के माध्यम से ही देखे जा सकते हैं। ये कीटाणु एवं विशाणु जल, वायु, भोज्य पदार्थों तथा अन्य अनेक माध्यमों से शरीर में प्रविष्ट होकर शनैः—शनैः अपना विकास एवं पोषण प्राप्त करते रहते हैं। अतः व्याधियों की रोकथाम के लिए इन रोगाणुओं एवं विषाणुओं को नष्ट करना आवश्यक होता है। हमारे प्राचीन ऋषि—मुनियों ने इस रहस्य को समझकर उसी आधार पर यज्ञ—विज्ञान का आविश्कार किया था। वेदों में रोगाणुवाद की मान्यता के अनेक प्रमाण खोजे जा सकते हैं—

अन्यान्त्रयं शीर्षण्यश्मथो पास्टयं क्रिमी न।
अवस्कवं व्यध्वरं क्रिमीन्वचसा जम्भायामसि।[32]

अर्थात् आंतों में उत्पन्न होने वाले विशूचिका के कीट, दाद—खाज आदि रोगों के उत्पादक कीट तथा राजयक्ष्मा आदि रोगों के कीट (अवस्कच), त्वचा के भीतर प्रवेश कर जाने वाले कीट, विकृत मांस को खाने वाले व्यध्वर नामक रोग कीटों को वेदवाणी में बतलाए गए उपायों द्वारा नष्ट करें। वेद मन्त्रों में अवस्कच, व्यध्वर, करूरु, अलगण्ड, यज्ञहन तथा शलुन जैसे षब्द रोग कीटों की जातियों के नाम हैं।[33] वेदों में इस तथ्य के स्पश्ट प्रमाण विद्यमान् हैं कि यज्ञ द्वारा व्याधियों से निजात पाया जा सकता है। अथर्ववेद में कहा

गया है कि हे व्याधिग्रस्त मनुष्य! तुझे सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए हवन द्वारा अज्ञात रोगों से तथा तपेदिक जैसे ज्ञात रोगों से बचाता हूँ। इन सब अङ्गों को जकड़ने वाला रोग भी पकड़ ले तो भी इन्द्र (षुद्ध वायु या सूर्य) की गर्मी तथा अग्नि होमादि इस उक्त रोग से मुक्त करें।[34]

भौतिक ऊर्जा और प्राण ऊर्जा के सम्मेलन से एक विलक्षण ऊर्जा का आविर्भाव होता है जिसे यज्ञाग्नि कहते हैं। अग्नि हवन सामग्री को ग्रहण कर देवलोक तक पहुँचाता है और यजमान के रत्नधारण करने वाला होता है। यज्ञाग्नि में औषधीय गुणों से युक्त आम, पीपल, देवदारू आदि की सूखी लकड़ियाँ समिधा के रूप में तथा लौंग, ब्राह्मी, पुनर्नवा, खस, चन्दन, जावित्री, केशर, कमलगट्टा, इन्द्र, जौ, मुनक्का, किसमिस इत्यादि लगभग 35–40 प्रकार की वस्तुएँ हवन सामग्री के रूप में प्रयोग की जाती हैं। इसके परिणामस्वरूप औषधीय गुणों से युक्त विशेष प्राकर की गैसों की उत्पत्ति होती है जो वातावरण अथवा रोगी के शरीर में व्याप्त रोगाणुओं अथवा विषाणुओं पर विनाशकारी आक्रमण करती हैं। इस प्रकार के वायु भूत औषधीय पदार्थों को व्याधिग्रस्त व्यक्ति श्वास द्वारा तथा रोम कूपों द्वारा ग्रहण करता है, जो पेट द्वारा पचाए गए इन पौष्टिक पदार्थों की तुलना में अधिक प्रभावशाली एवं लाभदायक सिद्ध होते हैं क्योंकि ये औषधीय पदार्थ पाचन हेतु गरिष्ठ होते हैं। इस प्रकार की यज्ञीय वायु में सुखाने का गुण भी होता है जो फेफड़ों के घावों को सुखा देती है। यजुर्वेद में उल्लेख मिलता है कि अग्नि में प्रक्षिप्त रोगनाशक, पुष्टि प्रदायक एवं जलादि संशोधक हवन सामग्री वायु भूत होकर वायु द्वारा बहुत दूर तक ले जायी जाती है और वहाँ पहुँचकर रोगादिजनक पदार्थो को नष्ट कर देती है।[35]

वैज्ञानिक परीक्षणोपरान्त भी यह निष्कर्ष निकला है कि अपराजिता, नीम, नागर मोथा एवं बचा औषधियों का धूम सभी प्रकार के कीटाणुओं/विषाणुओं का शमन करने में समर्थ होता है। साथ ही इससे रक्त शोधन भी होता है। गुगुल, लौंग, घी, शर्करा, चन्दनचूर्ण आदि का नित्य हवन करने वाले के षरीर में अग्नि तत्त्व की प्रधानता रहती है तथा उसकी रोग प्रतिरोधक क्षमता में अभिवृद्धि होती है।

यज्ञाग्नि एक प्रकार से विद्युत उत्पादक केन्द्र का कार्य करती है। उसके साथ निर्धारित ध्वनि का समावेश हो जाने पर उत्पन्न शब्द शक्ति की क्षमता एवं उपयोगिता कई गुणा बढ़ जाती है। शुद्ध वातावरण का सृजन विद्या एवं यज्ञ विज्ञान की समन्वित प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण फल है। यज्ञ में उद्गाता का महत्त्वपूर्ण पद इसलिए नियम है कि मन्त्रों को आवश्यकतानुसार ध्वनियों में विधिपूर्वक गया जा सके। इस प्रकार स्पश्ट है कि मन्त्र षक्ति एवं सूक्ष्म शब्द षक्ति यज्ञ के समय प्रयुक्त ऋचाओं का एक वैज्ञानिक परिणाम है जिससे व्यक्ति एवं समाज को आध्यात्मिक एवं वैज्ञानिक लाभ मिलता है।

यज्ञ चिकित्सा में कलष, चरु एवं पुरोडाश का भी वैज्ञानिक महत्त्व है। कलश में रखा जल यज्ञ प्रक्रिया के दौरान वाश्पीकृत वनौषधियों के सूक्ष्म गुणों तथा मन्त्रों के अलौकिक सामर्थ्य से युक्त होता रहता है। इसी प्रकार यज्ञ के अन्त में चरू अथवा पुरोडाश का हवन करने के बाद अवशिष्ट भाग को पुरुश (को पुरोडाश) अथवा स्त्री (को चरू) को भक्षण कराए जाने का विधान है। इस प्रकार के पुरोडाश अथवा चरू में विलक्षण औषधीय गुणों एवं अलौकिक मन्त्रशक्ति का समावेश हो जाता है, जिसके सेवन से याज्ञिकों में जीवनी शक्ति की अभिवृद्धि तथा सन्तानोत्पादक तत्त्वों की कमी की पूर्ति होती है। उपर्युक्त तथ्य की प्रमाणिकता अनेक आख्यानों से सिद्ध हो जाती है। राजा दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ में शृङ्गी ऋषि ने कौशल्या आदि रानियों को औशधीय गुणों से युक्त चरू का आस्वादन करवाया था। इसी प्रकार राजा चित्रकेतु के पुत्रेष्टि यज्ञ के समापन पर अङ्गिरा ऋषि ने पटरानी कृताधुति को चरू (खीर) खिलाया था जिससे उन्होंने सुन्दर एवं तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया था।[36]

यज्ञ प्रक्रिया के वैज्ञानिक अध्ययनों के फलस्वरूप अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने अप्रत्याशित रूप से विभिन्न रासायनिक पदार्थों की उत्पत्ति की पुष्टि की है। डॉ0 एम0 ट्रेल्ट ने लकड़ी के धूम में फार्मेल्डीहाइड की उपस्थिति को प्रमाणित किया है, जो एक शक्तिशाली कृमि–रोधक तथा सुगन्धित पदार्थ है।[37] हवन में मेथिल एल्कोहल, एथिल एल्कोहल, प्रोपिल एल्कोहल आदि भी बनते हैं। अग्निहोत्र के समय विभिन्न रासायनिक क्रियाओं के द्वारा फार्मिक, एसीटिक, वैरेलिक आदि अम्ल बनते हैं जो फसलों एवं पौधों के बीमारियों से बचाते हैं तथा उनकी उपज को बढ़ाते हैं। यजुर्वेद के मन्त्र में मिलता है कि – मूल, शाखा, वनस्पति, फल एवं औषधियों को स्वस्थ रखने के लिए स्वाहा पूर्वक यज्ञ करना चाहिए।[38]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट कि यज्ञ प्रक्रिया एवं उसको उद्दश्य पूर्णतया वैज्ञानिक है जिसके माध्यम से चिकित्सा क्षेत्र में, पर्यावरण के क्षेत्र में तथा अनेक वैश्विक समस्याओं का समाधान हो सकता है। यज्ञ के दौरान उत्पन्न होने वाले औशधीय गुणों से युक्त एवं सूक्ष्मीकृत अनेक पदार्थ रोगाणु एवं विषाणु नाशक होने के कारण वर्तमान में चुनौती बनी स्वाइन फ्लू (H_1N_1) बर्ड फ्लू (Bird Flu), एड्स (HIV) तथा डेंगू और कैंसर जैसी असाध्य बनी बीमारियों का उपचार सम्भव हो सकता है। इसके साथ–साथ समस्त पर्यावरण जनित समस्याओं का कारगर निदान भी सम्भव हो सकता है। वस्तुतः यज्ञों के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए भारत तथा विश्व के शीर्ष नेतृत्व को आगे आना चाहिए जिससे हमारे ऋषियों की विश्व–कल्याण का संकल्प सार्थक हो सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. शतपथ, 1.7.1.5
2. ऋग्वेद
3. यजुर्वेद
4. तैत्तिरीयत संहिता, 1.7.4
5. श्रीमद्भागवद्गीता, 3.9
6. वही, 3.13
7. वही, 1.15
8. चरणव्यूह, 5.9
9. यजयाचय तविच्छप्रच्छरक्षो नङ् अष्टाध्यायी, 3.3.90
10. यज्ञ मीमांसा
11. तत्रैव
12. तत्रैव
13. का.श्रौ.सू. 1.2.1.2
14. हवीषि हवै आत्मा यज्ञस्य। षतपथ, 1.6.2.29
15. नैयग्रोधः ओदुम्बरः प्लाक्ष इति इध्मो भवति, वही 1.5.4.1
16. ऋ. 10.110.4
17. हतं यज्ञमदक्षिणम्
18. गोपथ ब्राह्मण, 5.7
19. तैत्तिरीय संहिता, 2.2.5
20. मनु. 3.70
21. पञ्चसूना गृहस्थस्य .... प्रत्यहं गृहमेधिनाम्। मनु. 3.68–69
22. अथर्ववेद, 12.1.13
23. दयानन्द सरस्वती, सत्यार्थ प्रकाश, तृतीय समुल्लास
24. गीता, 3.10–11
25. अथर्ववेद, 9.15.14
26. शतपथ ब्राह्मण, 1.7.15
27. अथर्ववेद 12.1.27

28. अथर्ववेद, 12.1.11
29. ऋग्वेद 1.2.7
30. अग्नौ प्रस्ताऽऽहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते। आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः। मनु. 3.76
31. हितोपदेश, 71
32. अथर्ववेद, 2.31.4
33. येऽन्नेषुविविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान्। यजु. 1.19
34. मुञ्चाभित्वा हविषा जीवनाय कमज्ञात यक्ष्मादुत् राजयक्ष्मात्। ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र. मुमुक्तमेनम्।। अथर्व. 3. 11.1
35. दिवि विश्णु व्यक्तिस्त... यंच वयं द्विश्म। यजुर्वेद, 2.25
36. भगवत् पुराण, 6.14
37. Ranjan Majumdar. Modern Pharmacology and Therapeutie Guide, Kolkata Scientific Publication, 1957.
38. मूलेभ्यः स्वाहा शाखाभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा पुष्पेभ्यः स्वाहा फलेभ्य स्वाहा औषधीयः स्वाहा। यजु. 22.28